**E Content for students of Patliputra University**

**B.A(Hons),Part 1,Paper 1**

**Subject--Philosophy**

**Title/Heading of Topic-"-मीमांसा दर्शन में अपूर्व सिद्धान्त"**

**---डॉ. राज नारायण सिंह सहायक प्राध्यापक, दर्शनशात्र विभाग, राम रतन सिंह महाविद्यालय मोकामा, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय**

वेद में अनेक प्रकार के कर्मों की चर्चा हुई है। वेद की मान्यता को स्वीकार करते हुए बतलाती है कि किन-किन कर्मों का पालन तथा किन-किन कर्मों का परित्याग करना चाहिए:-

**(१) नित्य-कर्म** - नित्य कर्म वे कर्म हैं जिन्हें प्रत्येक दिन व्यक्ति को करना ही पड़ता है। कर्मों का उदाहरण ध्यान, स्नान, संध्या, पूजा आदि कर्म हैं। दैनिक प्रार्थना भी नित्य कर्म है। व्यक्ति को प्रातःकाल और संध्या काल प्रार्थना करना अनिवार्य है। इन कर्मों के करने से पुण्य संचय नहीं होता है परन्तु इनके नहीं करने से पाप का उदय होता है।

**(२) नैमित्तिक कर्म** - नैमित्तिक कर्म उन कर्मों को कहा जाता है जो विशेष अवसरों पर किये जाते हैं। चन्द्र-ग्रहण अथवा सूर्य-ग्रहण के समय गंगा नदी में स्नान करना नैमित्तिक कर्म का उदाहरण है। इसके अतिरिक्त जन्म, मृत्यु और विवाह के समय किये गये कर्म भी नैमित्तिक कर्म के उदाहरण हैं। इस कर्म के करने से विशेष लाभ

नहीं होता है परन्तु यदि इन्हें नही किया जाय तो पाप संचय होता है।

**(३) काम्य कर्म** - ऐसे कर्म जो निश्चित फल की प्राप्ति के उद्देश्य से किये जाते हैं काम्य कर्म (Optional actions) कहलाते हैं। पुत्र-प्राप्ति, धन-प्राप्ति, ग्रह शान्ति आदि के लिए जो यज्ञ, हवन, बलि तथा अन्य कर्म किये जाते हैं, काम्य कर्म के उदाहरण हैं। प्राचीन मीमांसकों का कथन है "स्वर्गकामो यजेत"। जो स्वर्ग चाहता है वह यज्ञ करे । स्वर्ग-प्राप्ति के लिए किये जाने वाले कर्म काम्य कर्म में समाविष्ट हैं। ऐसे कर्मों के करने से पुण्य संचय होता है। परन्तु इनके नहीं करने से पाप का उदय नहीं होता है।

**(४) निषिद्ध कर्म** - निषिद्ध कर्म (Prohibited actions) उन कर्मों को कहा जाता है जिनके करने का निषेध रहता है। ऐसे कर्मों को नहीं करने से पुण्य की प्राप्ति नहीं होती है परन्तु इनके करने से मनुष्य पाप का भागी होता है।

**(५) प्रायश्चित कर्म** - यदि कोई व्यक्ति निषिद्ध कर्म को करता है तो उसके अशुभ फल से बचन के लिये प्रायश्चित होता है। ऐसी परिस्थिति में बुरे फल को रोकने के लिए अथवा कम करने के लिए जो कर्म किया जाता है वह प्रायश्चित कर्म कहा जाता है। प्रायश्चित के लिए अनेक विधिया पूर्ण रीति से किया गया है।

ऊपर वर्णित कर्मों में कुछ ऐसे कर्म (नित्य और नैमित्तिक कर्म) हैं जिनका पालन वेद का आदेश समझ कर करना चाहिए। इन कर्मों का पालन इसलिए करना चाहिए कि वेद वैसा करने के लिये आश देते हैं इस प्रकार मीमांसा-दर्शन में निष्काम कर्म को, (Duty for Duty's Sake) ही धर्म माना गया है। कर्तव्य का पालन हमें

इसलिए नहीं करना चाहिए कि उनसे उपकार होगा बल्कि इसलिय करना चाहिये कि हमें कर्त्तव्य करना है।

मीमांसा की तरह कान्ट मानता है कि कर्तव्य कर्तव्य के लिए (Duty for Duty's Sake) होना चाहिए, भावनाओं या इच्छाओं के लिये नहीं। इसका कारण यह है मनुष्य कि भावनाएँ मनुष्य को कर्तव्य के पथ से नीचे ले जाती हैं। उक्त समता के बावजूद मीमांसा और कान्ट के कर्म-सिद्धान्तों में कुछ अन्तर है। मीमांसा और कान्ट के कर्म सिद्धांत में पहला अन्तर यह है कि मीमांसा फल के वितरण के लिये **'अपूर्व सिद्धान्त'** को अंगीकार करती हैं जबकि कान्ट फल के वितरण के लिये ईश्वर की मीमांसा करता है। मीमांसा और कान्ट के कर्म सिद्धान्त में दूसरा अन्तर यह है कि मीमांसा कर्त्तव्यता का मूल स्रोत एकमात्र वेद-वाक्य को मानती हैं जबकि कान्ट कर्त्तव्यता का मूल स्रोत आत्मा के उच्चतर रुप (Higher Self) को मानता है।

मीमांसा का कर्म सिद्धान्त गीता के निष्काम कर्म से भी मिलता-जुलता है। एक व्यक्ति को कर्म के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिए परन्तु उसे कर्म के फलों की चिन्ता नहीं करनी चाहिये । गीता का कथन है कि "कर्म करना ही तुम्हारा अधिकार है, फल की चिन्ता मत करो।"

मीमांसा के अनुसार विश्व की सृष्टि ऐसी है कि कर्म करने वाला उसके फल से वंचित नहीं हो सकता। वैदिक कर्म को करने से उनके फलस्वरुप स्वर्ग की प्राप्ति होती है। प्रत्येक कर्म का अपना फल होता है । जब एक देवता को बलि दी जाती है तो उसके फलस्वरुप विशेष पुण्य संचय होता है। वे सभी फल मुख्य लक्ष्य स्वर्ग अथवा मोक्ष को अपनाने में साहाय्य हैं। अब यह प्रश्न उठता है कि यह कैसे सम्भव है कि अभी के किये गये कर्म का फल बाद में स्वर्ग में मिलेगा? कर्म का फल कर्म के पालन के बहुत बाद कैसे मिल सकता है ! मीमांसा इस समस्या का समाधान करने के लिये

**अपूर्व सिद्धान्त** (Theory of potential energy) का सहारा लेती है। **'अपूर्व'** का शाब्दिक अर्थ है, वह जो पहले नहीं था। मीमांसा मानती है कि इस लोक में किये गये कर्म एक अदृष्ट शक्ति उत्पन्न करते हैं जिसे **अपूर्व** कहा जाता है । मृत्यु के बाद आत्मा परलोक में जाती है जहाँ उसे अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है। **'अपूर्व'** के आधार पर ही आत्मा को सुख-दुःख भोगने पड़ते हैं।

कुमारिल के अनुसार **अपूर्व'** अदृश्य शक्ति है जो आत्मा के अन्दर उदय होती है। कर्म के दृष्टि से **अपूर्व कर्म-सिद्धान्त** (Law of Karma) कहा जाता है। **अपूर्व सिद्धान्त** के अनुसार प्रत्येक कारण में शक्ति निहित है जिससे फल निकलता है। एक बीज में शक्ति अन्तर्भूत है जिसके कारण ही वृक्ष का उदय होता है। कुछ लोग यहाँ पर आपत्ति कर सकते हैं कि यदि बीज में वृक्ष उत्पन्न करने की शक्ति निहित है तो क्यों नहीं सर्वदा बीज से वृक्ष का आविर्भाव होता है। मीमांसा इसका कारण बाधाओं का उपस्थित होना बतलाती है जिसके कारण शक्ति का ह्रास हो जाता है। सूर्य में पृथ्वी को आलोकित करने की शक्ति है परन्तु यदि मेघ के द्वारा सूर्य को ढंक लिया जाय तो सूर्य पृथ्वी को आलोकित नहीं कर सकता है। **अपूर्व सिद्धान्त** सार्वभौम नियम है जो मानता है कि बाधाओं के हट जाने से प्रत्येक वस्तु में निहित शक्ति कुछ-न-कुछ फल अवश्य देगी। **'अपूर्व'** को संचालित करने के लिये ईश्वर की आवश्यकता नहीं है। यह स्वसंचालित है। **'अपूर्व'** की सत्ता का ज्ञान वेद से प्राप्त होता है । इसके अतिरिक्त अर्थापत्ति भी **'अपूर्व'** का ज्ञान देता है । शंकर ने **'अपूर्व'** की आलोचना यह कहकर की है कि **'अपूर्व'** अचेतन होने के कारण किसी आध्यात्मिक सत्ता के अभाव में संचालित नहीं हो सकते। कर्म के फलों की व्याख्या '**अपूर्व**' से करना असंगत है।